चाह और दीनता

मनुष्य यह नहीं जानता कि वास्तव में वह चाहता क्या है और प्रभु से माँगता क्या है ? उसके अंतर में अनेक प्रकार की चाहें उठतीं रहती हैं और वह उन्हीं के अनुसार व्यवहार करता है. किसी वस्तु या स्थान के विषय में कुछ सुना तो उसे प्राप्त करने की या देखने की इच्छा प्रबल हो उठती है. कहीं यह सुन लिया कि मालिक दर्शन करने योग्य हैं, उनके दर्शन अवश्य करने चाहिये, तो वैसी चाह उठने लगी. यदि यह चाह प्रबल हुई तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह अब और वस्तु नहीं चाहता, केवल मालिक के दर्शन करने हैं. किन्तु यह चाह क्षणिक होती है. उसे यह मालुम नहीं कि उसके अन्दर अनगिनत दूसरी चाहों के अम्बार लगे हुए हैं और जिस समय उन चाहों में से किसी एक या एक से अधिक ने उग्र रूप धारण किया और सँसार के भोग-रसों का झोंका आया तो मालिक के दर्शनों की चाह का पता भी न रहेगा कि किधर विलीन हो गई. हमारा अंतःकरण मलीन है. पर्दे पर पर्दे पड़े हैं. हर पर्दे से चाहें उठती हैं और जितनी नीचे से चाह उठेगी, ऊपर वाली चाह को दबा लेगी. यदि मालिक से मिलने की चाह अंतःकरण (ब्रह्माण्डी मन या सतोगुणी मन) के भीतरी पर्दे से होती तो वह अन्य चाहों के उठने पर इस तरह विलीन नही हो जाती. वह चाह तो अंतःकरण के बाहरी पर्दे (पिंडी मन या रजोगुणी मन) से उठी थी, इसलिए जल्दी विलीन हो गई .

सत्संगियों की भी न्यूनाधिक यही दशा होती है. जिस समय जो चाह जागृत होकर उभार लेती है उस समय उसी का वेग रहता है और उसी के अनुसार कर्म होने लगते हैं. जब तक कोई चाह प्रबलता से नहीं उभरती तब तक वह यह समझता है कि अब कोई संशय शेष नहीं रहा, सब बातें अच्छी तरह समझ ली, अब तो केवल एक ही चाह शेष है कि मालिक के दर्शन हो जाएँ. किँतु यह सोच -विचार बिलकुल ग़लत हैं क्योंकि जो चाहें मन में अभी गुप्त रूप से जमा हैं उनकी उसे अभी सुध भी नहीं है. मनुष्य जब भजन, ध्यान और ईश्वर का स्मरण करने बैठता है तो चाहों के हिजूम सामने आने लगते हैं. स्मरण, ध्यान व भजन जिसके लिए वह बैठा था, सब ग़ायब हो जाते हैं. यदि मालिक से मिलने और उसके दर्शन करने की चाह के सिवाय और कोई चाह अंतर में मौज़ूद नहीं थी तो यह सब चाहें कहाँ से आ गईं. बात वास्तव में यह है कि ये सब चाहें मन में पहले से ही जमा थीं और जमा हैं. अन्तर केवल इतना है कि जो मनुष्य संत सदगुरु की शरण में आए हैं और जिनको उन्होंने उपदेश दे दिया है उनके अंतःकरण मेँ ईश्वर से मिलने और उसके दर्शनों की चाह के बसने की जड़ जम गई हैं. उनके अंतर में वह चाह नीचे के पर्दों तक प्रवेश करती जाती है और सदा मौज़ूद रहती है चाहे देखने में उनका व्यवहार निपट संसारियों का सा क्यों न हो. चाहें जितने भी झकोले दुनिया के झंझटों के आवे वह चाह नष्ट

नहीं होंगी , बीज रूप में बनी अवश्य रहेगी . बहुत समय तक गुरु के सत्संग में रहने से जब वह चाह निज मन और सुरत में बस जावेगी तब कोई डर नहीं रहेगा, यह निश्चय हो जाएगा कि कभी वह चाह प्रबल रूप धारण करेगी और एक न एक दिन उसके प्रभाव से मालिक से मिलना हो सकेगा. किँतु यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि मालिक से मिलना या उनके दर्शन प्राप्त करना कोई दाल -भात नहीं है जो आसानी से खा लिया जाए. जब दुनिया और दीन की सब चाहों में आग लगा दी जायेगी, केवल एक चाह मालिक से मिलने की ही शेष रहेगी, और मनुष्य के सब व्यबहार, आँतरिक और बाहरी, उसी के अंतर्गत होंगे, सब पाप का नाश हो जायेगा, तब मालिक के दर्शन होंगे.

यह युग प्रेम और भक्ति का हैं जो बिना दीन बने नहीं आ सकती. यदि सच्ची चाह मालिक से मिलने की और उनके दर्शन प्राप्त करने की होगी तो सच्ची दीनता भी आवेगी और उससे परमार्थ की कार्यवाही सुगमता से बन पड़ेगी. यदि सच्चे गुरु की शरण प्राप्त कर ली है और उनके उपदेश का पालन करता है तो चाहे वह कहीं रहे उसका परमार्थ बनना शुरु हो गया है. जो बीज सतगुरु ने उसमें डाल दिया है वह नष्ट नहीं होगा. जब भी उससे सच्चे परमार्थ की कार्यवाही बनेगी वह बीज अंकुर बन कर फूटेगा और फूलेगा फलेगा. उसकी एक न एक दिन सब चाहें नाश हो जायेंगी. केवल एक ही प्रबल चाह रह जाएगी कि कब मालिक के दर्शन प्राप्त हों. सतगुरु के चरणों में प्रीति आना बड़े सौभाग्य की बात हैं. इसी के द्वारा सब मार्ग सुगम हो जाता है.

सच्चे मालिक की प्राप्ती की चाह या ऐसी चाहें जो उसके प्राप्त होने में सहायक हों, उनको छोड़ कर शेष सब चाहें निकृष्ट हैं और दुनिया में फसाने वाली हैं. संसारी चाहों के पूरा होने से परमार्थ की कार्यवाही नहीं बन सकती. यह भले ही हो जाए कि हर मृत्यु से कुछ कर्म कट जाएँ, कुछ कर्म -बोझ हल्का हो जाए और आगे चल कर जब इन सब से ऊब जाये तब मालिक से मिलने की सच्ची दीनता पैदा हो तथा सच्चे परमार्थ की करनी बने.

सच्ची दीनता यह है कि संसार से दुःखी होकर संसार को छोडना चाहे. जो इस सँसार से दुःखी है उसे यहां की कोई वस्तु नहीं सुहाती, किसी वस्तु में आवश्यकता से अधिक उसका ध्यान नहीं जाता. वह यहां इस तरह रहता है जैसे कोई परदेसी हो जो दूसरी जगह जाकर बेबस और लाचार हो जाता है और यही समझता है कि यह देश मेरा नहीं है. जिसका कोई हाल पूछने वाला नहीं और जैसे संसार तथा उसके पदार्थों से कोई लगाव नहीं है उसका पूछने वाला परमपिता परमेश्वर है. ऐसा मनुष्य सच्चा दीन और ग़रीब है. ग़रीब से मतलब यह है कि उसके पास किसी का बल और नहीं है. न तो वह संसार के किसी योग्य है और न ही वह परमार्थ की करनी ही भली प्रकार कर सकता है. ऐसे दीन पर मालिक ख़ूब दया करता है और उसके सब काम भली प्रकार बनते चलते

हैं. उसको सिवाय मालिक के किसी दूसरे का बल और सहारा नहीं है. जो मनुष्य ऐसा दीन होगा वह सतगुरु के वचन हितचित से सुनेगा और उन पर अमल करेगा. यह हुई उत्तम दीनता. इससे भी उत्तम अर्थात सर्वोत्तम दीनता होती है - वह है प्रेम रूप दीनता. प्रेम में वह आकर्षण होता है कि सुरत स्वयँ मालिक की ओर को खिचती है क्योंकि वह उसका अंश है. जब मनुष्य के सब आपे दूर हों, सिवाय परमात्मा के और किसी का भरोसा न हो तब प्रेम की अवस्था प्राप्त होतीं है और वही पूर्ण दीनता की अवस्था है. जब सच्चा और पूर्ण दीन बने तो दीनबंधु और दीनानाथ का पात्र बने. अतः दीनता को अपनाना चाहिए , पहले चाहे वह निकृष्ट श्रेणी की ही क्यों न हो. धीरे -धीरे वह उत्तम और अति उत्तम श्रेणी की भी हो जायेगी. इस काम में सतगुरु का सत्संग बहुत लाभदायक है. जब जब सतगुरु का संग मिले उसका लाभ उठाना चाहिए.

असली सत्संग यह है कि सतगुरु की वाणी को याद रखे और उनके आदेशों पर चलने का प्रयत्न करे. संत लोग ज़ाहिरदारी उपदेश बहुत कम करते हैं क्योंकि अभ्यासी इस कान सुनते हैँ और उस कान निकाल देते हैं. वे उपदेश उसी को करते हैं जो उसका पालन करने की कोशिश करते हैं अन्यथा वह मौन धारण कर लेते हैं. क्योंकि बात यदि स्पष्ट कही जाए तो जो व्यक्ति मनमत है और अपने मन के कहने पर चलता है वह उनके वचन सुनकर बिलकुल ही अलग हो जाएगा. जब तक वह अपने मन के मुताबिक़ व्यबहार कर रहा है तो मन की ओट में कुछ भक्ति भी कर रहा है. संभव है आगे चल कर सीधे रास्ते पर आ जाए, और यदि उसको कोई बात साफ -साफ कही जायेगी, तो जो वह कर रहा था उसको भी छोड़ देगा और जो कुछ लाभ हो रहा था उससे भी वंचित हो जाएगा. इसलिए संत लोग ऐसे अभ्यासिओं के साथ ख़ामोशी इख्तियार कर लेते हैं और इसी में उनकी भलाई है.

राम संदेश - दिसंबर , १९६७.